गोत्र-विज्ञान

मानव जाति के विकास के लिए शादी-विवाह एक प्राकृतिक साधन है। भारतीय परम्परा के अनुसार इस अवसर पर **'वर-पक्ष'** एवम् **'वधू-पक्ष'** के गोत्र पर विचार अवश्य किया जाता है। गोत्र की बात पर चर्चा होकर अनेक बार सगोत्र होने अथवा हीनगोत्र होने के विचार से रिश्ते जुड़ने से रह जाते हैं । गोत्र सम्बन्धी वैज्ञानिक जानकारी के अभाव में नैतिक व सामाजिक नियमों के अवमूल्यन से उत्पन्न एड्स जैसे खतरों को जानते हुए भी आज की युवा पीढ़ी ने अब अपना जीवनसाथी स्वयं चुनना ही शुरू नहीं कर दिया है, बल्कि पश्चिमी सभ्यता का अनुसरण करते हुए विवाह से पूर्व डेटिंग, उन्मुक्त यौनाचार एवम् बिना विवाह के साथ-साथ रहने तक के निर्णयों को अंजाम देना शुरू कर दिया है। इस प्रकार के विवाह से उत्पन्न सन्तान ऐसे हैं, जैसे येन-केन-प्रकारेण खेत में बीज बो दिया गया, जैसा-तैसा पौधा हो गया और कुछ भी फल की गुणवत्ता हो गई। बस सब कुछ अनिश्चित। अतएव विज्ञान के युग में जबकि नई पीढ़ी रॉकेट एवम् रोबोत की दुनियाँ पर सवार होकर अन्तरिक्ष तक पहुँच चुकी है, हमें गोत्र परम्परा पर भी कुछ वैज्ञानिक विधि से विचार कर लेना आवश्यक है ।

1. सन्तानोत्पत्ति - ''एक वैज्ञानिक विधि''

''भारतीय मनीषियों ने विवाह एवम् सन्तानोत्पत्ति पर गहन शोध किये थे और तब मनचाही सन्तान उत्पन्न करने की विधि का विकास किया था । इतिहास में भगवान श्रीराम एवम् सीता की उत्पत्ति एक पूर्ण वैज्ञानिक विधि थी, जो ऋषियों ने अपनायी थी और उससे राम-सीता जैसी महान् आत्माओं ने पृथ्वी पर जन्म धारण कर मर्यादाओं की स्थापना करके समाज को गौरवान्वित किया था। मनचाही एवम् चरित्रवान सन्तान उत्पन्न करने की विधि अभी भी है, परन्तु उसे शोध एवम् परिष्कार द्वारा प्रकाश में लाए जाने की आवश्यकता है।

2. वर्णाश्रम धर्म

गोत्र परम्परा वर्णाश्रम धर्म का एक अंग है । अब से 1200 वर्ष पूर्व आदि शंकराचार्य जी के प्रादुर्भाव के समय जब सम्पूर्ण उत्तर भारत में बौद्ध धर्म का बहुत अधिक प्रभाव था, तब वर्णाश्रम व्यवस्था चरमराने लगी थी । आचार्य शंकर ने गीता के आधार पर इसे पुनः स्थापित किया।

3. वर्णाश्रम धर्म का आधार - ''प्रवृत्ति''

श्रीमद्भगवद्-गीता में वर्ण व्यवस्था सम्बन्धी सिद्धान्त में कहा गया है-

''चातुर्वव्यम् मयासृष्टम् गुण कर्म विभागशः'' *(4/13)*

अर्थात् चारों वर्णों की स्थापना का आधार व्यक्ति के गुण एवम् कर्म हैं । इसका अर्थ यह हुआ, कि जिस मनुष्य की जैसी **'प्रवृत्ति'** अर्थात् स्वभाव, गुण एवम् कर्म पाये गये, उसको उसी प्रकार के वर्ण में मान लिया गया । जैसे कि -

1. अध्ययन, अध्यापन, शोध, उपदेश, समाज का मार्गदर्शन एवम् त्याग वृत्ति- ब्राह्मण के गुण अर्थात् **'शिक्षक'** ।

2. राज्य की रक्षा, समाज का **शासन, धर्म, गो, वेद** एवम् **ब्राह्मणों** की सुरक्षा तथा धर्म के **प्रचार-प्रसार का उत्तरदायित्व** - क्षत्रिय के गुण अर्थात् **'रक्षक'** ।

3. कृषि, गोरक्षा, वाणिज्य, उत्पादन, भण्डारण एवम् समाज के भरण-पोषण का कार्य- वैश्यों के गुण अर्थात् **'पोषक'** ।

4. शेष लोग समाज के अन्य कार्यों में लगाये गये, ताकि पूरा समाज एकजुट बना रहे अर्थात् **'सेवक'**।

इस वर्ण व्यवस्था की प्रेरणा मानव शरीर की आदर्श स्थिति से ली गयी है । मानव मस्तिष्क पूरे शरीर के हित में सोचता है तथा वही पूरे शरीर का ठीक प्रकार से संचालन भी करता है। अतएव गर्दन से ऊपर तक का सारा भाग **'ब्राह्मण'** के जैसे गुणों वाला कार्य करता है । मुँह में भोजन रखते ही मुँह चबाने के पश्चात् यथाशीघ्र **'पेट (वैश्य)'** के पास भेज देता है । यह क्रिया **'ब्राह्मण'** के त्याग को दर्शाती है । मानव भुजाएं पूरे शरीर की रक्षा करने में अपना बलिदान तक कर देती हैं, अतएव यह **'क्षत्रिय'** का कर्म अर्थात् वर्ण है तथा **'पेट (वैश्य)'** भोजन को पचा कर पूरे शरीर को समान रूप से बाँट देता है अर्थात् वैश्य अपनी त्याग वृत्ति द्वारा समाज का भरपूर पोषण करता है । इसी प्रकार मस्तिष्क की आज्ञानुसार टाँगें पूरे शरीर को यथास्थान पर संचालित करती हैं । यहाँ पर यह बात स्पष्ट है, कि सिर्फ टाँगें ही नहीं भुजाएं व पेट भी **'मस्तिष्क (ब्राह्मण)'** के आदेशानुसार ही चलते हैं, तभी मानव पूरी तरह सुरक्षित एवम् स्वस्थ रहता है । लेकिन यदि **मस्तिष्क (ब्राह्मण)** अपने कर्त्तव्य से भ्रष्ट हो गया, तो सारा समाज का भ्रष्ट होना स्वाभाविक है ।

परन्तु इतिहास से ऐसा सिद्ध होता है, कि महाभारत के पश्चात् एक लम्बे समय तक देश का शासन वैश्यों के द्वारा किया गया, जबकि बाद में क्षत्रियों द्वारा शासित समय देश के लिए अच्छा नहीं रहा । स्पष्ट है, कि व्यापार वृत्ति के महानुभाव अधिक व्यापक दृष्टिकोण रखते रहे, उससे देश-विदेश में भारत का व्यापार ही नहीं, बल्कि बढ़े हुए व्यापार से **धर्म एवम् संस्कृति** का प्रचार-प्रसार भी हुआ और वह भारत से बाहर भी गयी। उस समय की वर्ण-व्यवस्था में इतनी रूढ़िवादिता एवम् कट्टरता नहीं थी, जितनी कि मुस्लिम शासन-काल एवम् उसके पश्चात् बढ़ गयी, क्योंकि तब भय आतंक एवम् कत्लेआम के साए में समाज के **'बुद्धिजीवी'** वर्ग का सम्पूर्ण विनाश हो गया था तथा वैदिक समाज अज्ञानांधकार में डूब गया । परिणामस्वरूप अंधविश्वास, रूढ़वादिता एवम् कट्टरता में बेतहाशा वृद्धि हुई ।

4. वर्ण संकरता

गीता के प्रथम अध्याय में अर्जुन के मुख से वर्ण-संकरता के बारे में जानकारी मिलती है । अर्जुन की चिन्ता यह थी, कि युद्ध के पश्चात् क्षत्रियों की विधवायें यदि अन्य वर्णों से विवाह करेंगी, तो क्षत्रियोचित प्रवृत्ति वाली संतान न पैदा होकर अन्य प्रवृत्तियों वाली सन्तानों का जन्म होगा । अन्य वर्णों द्वारा उत्पन्न सन्तानों से समाज में संकर विचारों का प्रचार-प्रसार बढ़ेगा और तब समाज का ढाँचा चरमराने लगेगा । लोग धर्म विहीन हो जायेंगे और तब अशान्ति, अत्याचार एवम् पाप से धरती आप्लावित हो जायेगी ।

वर्ण-संकरता का सीधा-सीधा अर्थ है - **''चरित्र भ्रष्ट संतान''** । जो मनुष्य जिस कार्य को लगातार कुछ खास समय तक करता रहता है, उसके शरीर में उस प्रकार के जीन्स *(Genes)* का निर्माण हो जाता है और फिर वही जीन्स उसकी प्रवृत्ति बन जाती है । वैसे ही जीन्स उसके पुत्र में भी पाये जाते हैं, बशर्ते कि उसकी पत्नी शुद्धाचरण वाली हो । इसीलिए पुत्र को 'आत्मज' कहा जाता है, अर्थात् ''अपने जैसा'' । **जिस प्रकार एक छोटे से खेत में लाल मिर्च, गन्ना, तोरी, राई, गेहूँ आदि कई बीज एक साथ और पास-पास बोये जायें और उनकी सार-सम्भार भी ठीक से की जाये तो आप पायेंगे, कि जो फल उत्पन्न होंगे उनमें आपस में क्रिया-प्रतिक्रिया स्वरूप मिर्च में गन्ने का गुण एवम् गन्ने में मिर्च का, राई में तोरी का एवम् गेहूँ में राई के कुछ-कुछ स्वाद एवम् गुण पाये जायेंगे** । इस प्रकार हर उत्पन्न बीज अपने पूर्व गुणों एवम् स्वाद से भिन्न मिलेगा और ऐसा कई बार होने पर उनमें और अधिक फेर बदल होने की सम्भावना रहती है । **इसी प्रकार स्त्री एक खेत जैसी है, परन्तु स्त्री की योनि में सिंचित किसी एक पुरुष के वीर्य के कीट *(Sperm)* से एक ही अण्डा *(Ova)* भ्रूण (Embroy) बनेगा और वह भ्रूण शुद्ध उस पुरुष के गुणों वाला ही बनेगा** । लेकिन यदि स्त्री गर्भ के दौरान किसी अन्य पुरुष का गम्भीर चिन्तन एवम् मनन अथवा किसी अन्य पुरुष से सम्भोग करेगी, तो भ्रूण में उस नये पुरुष के गुण, कर्म व स्वभाव के बहुत कुछ गुण पहुँच जायेंगे । यही कारण है, कि कई बार तथा-कथित अच्छे कुल में भी दुष्ट पुत्र अथवा दुराचारी सन्तान होती देखी जाती है । ***गर्भस्थ शिशु इतना संवेदनशील होता है, कि माँ के द्वारा देखे गये, सुने गये अथवा चिन्तन किए गये सभी प्रकार के दृश्यों, श्रव्यों का प्रभाव वह शीघ्र ग्रहण कर लेता है । अभिमन्यु ने गर्भ में ही सुभद्रा द्वारा सुने गये 'चक्र-व्यूह' के भेदन की क्रिया सीख ली थी ।*** इसीलिए गर्भवती माँ को यह परामर्श दिया जाता है, कि वह अश्लील दृश्यों जैसे - सिनेमा तथा भयावह दृश्यों आदि का अवलोकन न करे, बल्कि उसके कमरे में वीरों, धर्मगुरुओं तथा प्राकृतिक सौन्दर्यपूर्ण चित्रों एवम् भगवत् सम्बन्धी विचारों वाले चित्र लगे होने चाहिए तथा पूरे गर्भ के दौरान वह जहाँ तक हो सके पवित्र एवम् सात्विक विचारों वाला साहित्य ही पढ़े अथवा मनन करती रहे, ताकि गर्भस्थ शिशु चरित्रवान बन सके और यदि स्त्री ने इन नियमों का पालन नहीं किया तो बहुत सम्भावना है, कि जो सन्तान उत्पन्न होगी वह वर्णसंकर ही होगी, अर्थात् न तो वह शुद्ध व्यापारी होगी और न ही शुद्ध क्षत्रिय अथवा ब्राह्मण आदि और फिर

समाज में वर्ण की संकरता के साथ-साथ भ्रष्टाचार, हत्याओं एवं आत्महत्याओं की बाढ़ आ जायेगी । इसके फलस्वरूप सब ओर अशान्ति ही अशान्ति होगी । आज समाज में ऐसा ही तो हो रहा है । ***इसीलिए पुरुषों पर यदि उपनयन, यज्ञोपवीत, गुरुकुल शिक्षा, वेद शिक्षा एवम् आश्रम व्यवस्था जैसे अनुशासन लगाए गये, तो फिर स्त्री पर अपने सतीत्व की रक्षा का दायित्व बहुत आवश्यक माना गया, ताकि वर्ण की शुद्धता बनी रहे और शुद्ध वर्ण वाले व्यक्ति अपने चरित्र को ऊँचा बनाए रख सकें एवम् राष्ट्र में सब ओर सुख-शान्ति रहे और समाज का अधिकाधिक कल्याण हो तथा सभी व्यक्ति मोक्ष की ओर एक साथ उन्मुख हों ।***

5. संकर बीजों का अध्ययन

आज विज्ञान ने कृषि के क्षेत्र में संकर बीजों का आविष्कार करके पैदावार तो बढ़ायी है, परन्तु हम सभी अच्छी प्रकार से अनुभव करते हैं, कि जो गेहूँ आज हम खा रहे हैं उसमें वह स्वाद एवम् पौष्टिकता नहीं है, जो पहले हुआ करती थी अर्थात् संकरता ने बीजों में **'उच्च-गुणवत्ता'** को काफी हद तक कम किया है । इसी प्रकार वर्णसंकर सन्तानें समाज में 'उच्च-विचारधारा को बनाए रखने अर्थात् चारित्रिक उच्चता, धर्म परायणता आदि को बनाये रखने में योगदान नहीं कर पाती है फलस्वरूप पृथ्वी पर पाप का बोझ बढ़ता है । **यह बात बड़ी ही दूरन्देशी वाली है और हर व्यक्ति को मुश्किल से समझ में आएगी, परन्तु समाजशास्त्रियों एवम् धर्माचार्यों के लिए अत्यन्त महत्त्व की है ।**

6. जीन्स (Genes) का सिद्धान्त

डॉ. हरगोविन्द खुराना जैसे भारतीय मूल के वैज्ञानिकों के शोध से यह बात सिद्ध हुई है, कि किसी भी व्यक्ति की प्रवृत्ति अर्थात् गुण उसके अन्दर पाये जाने वाले विभिन्न प्रकार के जीन्स से शासित होते हैं । आज तो यह बात सूर्य की भाँति स्पष्ट है, कि गुण, कर्म, स्वभाव से वैसे जीन्सों का निर्माण होता है और फिर वही जीन्स अपने अनुरूप ही सन्तान को जन्म देते हैं । **बहुत तरह की बीमारियाँ, आदतें, स्वास्थ्य-बल, बुद्धि-बल, मनोबल यहाँ तक कि अच्छा बुरा भाग्य भी बहुत कुछ माता-पिता के जीन्स द्वारा सन्तान को मिलता है ।** अब तो पता लगा है, कि शराबी की सन्तान शराबी एवम् धार्मिक व्यक्ति की सन्तान धार्मिक भी जीन्स से ही उत्पन्न होती है । इसमें कभी-कभी ही कुछ अपवाद पाये जाते हैं, वह भी माता-पिता के जीन्स का अथवा पिछले सात पीढ़ी से भी आने वाले प्रसुप्त जीन्स के कारण भी गड़बड़ी हो जाती है ।

7. 'धर्म' अर्थात् चरित्र - 'समाज रचना का आधार'

सभी प्रकार के प्रदूषणों में विचारों का प्रदूषण सबसे अधिक हानिकारक माना गया है । कानून से इस प्रदूषण पर नियंत्रण रख पाना असम्भव है । अतएव धर्म-शासित राज्य की स्थापना ही इसका एक मात्र हल है । इसीलिए उच्च चारित्रिक गुणवत्ता बनाये रखने हेतु समाज रचना में धर्म का स्थान सर्वोच्च माना गया और यह प्रयास

किया गया, कि किसी भी प्रकार से 'धर्म' के सिद्धान्तों को क्षीण न होने दिया जाये, ताकि धरती पर पाप का बोझ अधिक बढ़ने न पाये । इस बात को ध्यान में रखकर तरह-तरह की **'पूजा-अर्चना'** एवम् **'ईश्वर-उपासना'** विधियाँ खोजी गयीं, ताकि हर मानव के गुण, कर्म, स्वभाव के अनुरूप उपासना पद्धति सिखायी जाए ।

भारत में अनेक ऋषि हुए हैं जिन्होंने वेदों की रचना की, भाष्य एवम् टीकाएँ लिखीं। स्मृति एवम् पुराणों का लेखन किया, ताकि चरित्र निर्माण हेतु समाज को उचित मार्गदर्शन मिलता रहे । भतृहरि नीतिशतक में कहा गया है :-

स जातो येन जातेन, याति वंशः समुन्नतम् ।
परिवर्तिनि संसारे मृतः, को वा न जायते ॥

अर्थः- इस परिवर्तनशील जगत में कितने ही मनुष्य उत्पन्न होते हैं एवम् (कीट पतंगों की भाँति) मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं । परन्तु उसी मानव का जीवन धन्य है, जिसके द्वारा वंश, (देश, समाज एवम् प्राणीमात्र) की उन्नति हो ।

यह था - **''ध्येय वाक्य''** । इसीलिए विवाह नाम की संस्था का निर्माण किया गया था, ताकि महान् आत्माओं का धरती पर अवतरण कराया जा सके तथा समाज का चारित्रिक स्तर ऊँचा रहे एवम् सर्वत्र सुख-शान्ति बनी रहे ।

8. गुरु-शिष्य परम्परा एवम् गोत्र विचार

यह गुरु ***शिष्य परम्परा भारत की महान परम्पराओं में से एक है । यह एक अति पवित्र बन्धन माना जाता है, गुरु-शिष्य सम्बन्ध पुत्र-तुल्य माना जाता रहा है। ऐसी ही गुरु परम्परा का द्योतक है यह ''गोत्र'' शब्द ।*** हमारे यहाँ नौ एवम् अठारह के अंक पवित्र अंक माने जाते रहे हैं । अठारह पुराण, अठारह अक्षौहणी सेना, गीता में अठारह अध्याय आदि । ऐसी मान्यता है, कि राजा अग्रसेन के अठारह पुत्रों ने अठारह ऋषियों से **'ईश-उपासना'** की दीक्षा ली थी । उन्हीं गुरुओं को पिता-तुल्य मानकर उन्हीं ऋषियों के नाम से उस परिवार के वंशजों ने अपनी पहचान बनायी, ताकि उनके गुरु का नाम सदैव चलता रहे । उस काल में गुरु को समाज का श्रेष्ठतम व्यक्ति तथा गुरु के वाक्य को अन्तिम वाक्य माना जाता था । अपना परिचय देते हुए कोई भी शिष्य पहले अपने गुरु का नाम बतलाता था, जैसे - **अर्जुन ने कहा, ''मैं द्रोण शिष्य, पांडुपुत्र अर्जुन हूँ''** । किसी न किसी गुरु का शिष्य बनना जीवन का एक आवश्यक कार्य माना जाता था, जो व्यक्ति किसी को अपना गुरु नहीं बनाता था, वह **'निगुरा'** व्यक्ति समाज में हेय दृष्टि से देखा जाता था । तीनों वर्णों को गुरु बनाना आवश्यक था। गुरु बनाने में एवम् धर्म की ध्वजा को ऊँचा रखने में सरस्वती-पुत्र ब्राह्मणों एवम् लक्ष्मी-पुत्र वैश्यों ने ही अधिक बढ़-चढ़ कर हिस्सा लिया । ब्राह्मण, वैश्य एवम् क्षत्रिय जाति के लोगों में, सभी के गुरुओं के लगभग एक जैसे नाम के गुरु मिलेंगे। अंतर इतना रहा, कि समाज में ब्राह्मणों का स्थान प्रथम होने के कारण उन्होंने अपने गोत्रों के नाम को गुरु के नाम जैसा बनाए रखा।

जैसे - गौतम ऋषि के ब्राह्मण शिष्य का गोत्र **'गौतम'** तथा भारद्वाज के शिष्य **'भारद्वाज'** ही कहलाये । कुछ ब्राह्मणों ने अपने काम के अनुसार गोत्र धारण कर लिये, जैसे- वेदी, द्विवेदी, त्रिवेदी इत्यादि । शेष जातियों को कहा, कि वे शब्दों में कुछ बदलाव कर लें, अतएव वैश्यों ने अपने गुरुओं के नाम में **'अल'** शब्द जोड़कर बदलाव कर लिया, ताकि ब्राह्मणों से थोड़ा अन्तर बना रहे, जैसे:-

1. भरद्वाज (भद्दल), 2. गार्गेय (गर्ग), 3. कश्यप (कुच्छल), 4. मैत्रेय (मित्तल) 5. शांडिल्य (सिंहल) 6. वात्सल्य (बंसल) इत्यादि ।

उच्च चरित्र की प्राथमिकता होने के कारण अग्रसेन की दूसरी रानी से उत्पन्न सन्तान दसा कहलायी तथा पहली बीसा, क्योंकि दूसरी रानी की सन्तानें तत्कालीन समाज में प्रचलित चारित्रिक मापदण्ड को पूरा नहीं कर पा रही थीं । अन्य जातियों ने भी देखा-देखी गुरु बनाये । जो नहीं बना पाये, उन्होंने ऋषि कश्यप को अपना गुरु मानकर कश्यप की सन्तान कहलाने में गौरव का अनुभव किया । आज भी यदि किसी का दूर का रिश्तेदार अथवा गाँव का रहने वाला राष्ट्रपति होता है, तो वह व्यक्ति उससे अपना रिश्ता बताकर गौरव का अनुभव करता है । यही मनोदशा तब भी थी, जब गुरु-शिष्य परम्परा का जन्म हुआ था, क्योंकि यह माना जाता था कि **'निगुरा'** कभी भी ईश्वर तक नहीं पहुँच सकता। **''गोत्र''** शब्द की उत्पत्ति ईश्वर अर्थात् मोक्ष प्राप्ति के विचार से हुई है ।

9. गीता एवम् गोत्र

गीता अध्याय अठारह, श्लोक संख्या 44 के अनुसार कृषि, गो पालन एवम् क्रय-विक्रय करने वाला व्यक्ति वैश्य वर्ण की श्रेणी में आता है, अतएव भगवान श्रीकृष्ण का वैश्य वर्ण बनता है । उनके गुरु का नाम **'गर्ग-ऋषि'** था । इस प्रकार श्रीकृष्ण का गोत्र **'गर्ग'** था । युधिष्ठिर के **'राजसूय-यज्ञ'** में उनकी अग्रज पूजा की गयी थी अर्थात् उस काल में वैश्य विचारधारा को विशेष मान्यता मिली । वैसे भी सतयुग सम्पूर्ण रूप से **'ब्राह्मण'** युग था, तब राजा हरिश्चन्द्र जैसे सत्यवादी राजा हुए जिन्होंने स्वप्न में दान दिये जाने को भी सत्य मानकर अपना राजपाट विश्वामित्र को सौंप दिया, जबकि श्रीकृष्ण ने वैश्य प्रवृत्ति के अनुरूप ***''अश्वत्थामा हतो, नरो वा कुंजरो''*** को भी न्यायोचित बतलाया। त्रेतायुग पूरा क्षत्रियों का युग था। तब धर्म तीन पद पर प्रतिष्ठित था और धर्म की मर्यादाओं का पूरा-पूरा पालन श्रीराम जी ने किया था । आज के युग की प्रवृत्ति पूरी तरह से शूद्र प्रवृत्ति है, अतएव चारों ओर लूटमार, हत्याएं, रिश्वतखोरी, झूठ, बेईमानी छायी हुई है। यह सब कलियुग का धर्म है और इस सबका नियमन ब्रह्माण्डीय पिण्डों द्वारा किया जाता है।

10. आधुनिक पहचान चिह्न

कुछ लोगों ने गुरु से अपनी पहचान जोड़ने के स्थान पर कुछ भिन्न तरीके से अपनी पहचान बनायी । उन्होंने अपने पूर्वजों से, ग्राम से अथवा अपने कार्य से अपने को जोड़ा।

दक्षिण भारत से आने वाले लोग सर्वप्रथम अपने दादा का फिर पिता का नाम, तब गाँव का फिर अपना नाम धारण किए होते हैं, जैसे- टी.एस.एल.वी. शर्मा । टी.- दादा का, एस.- पिता का, एल.-अपने गाँव का फिर अपना, तब वर्ण अर्थात् ब्राह्मण- शर्मा, यह पूरा परिचय है। कुछ लोग अपने गाँव का नाम लिखना ठीक समझते हैं, जैसे- बरनाला, झुनझुनवाला आदि । कुछ लोगों ने अपने गोत्र को अपने काम से जोड़ना ठीक समझा, जैसे- लोहिया (लोहे का काम करने वाले), गाँधी (गंध अर्थात् इत्र का काम करने वाले) अथवा कपाड़िया (कपड़े का काम करने वाले), भण्डारी, कुठारी इत्यादि। इस विचारधारा में भी चरित्र की उच्चता बनाए रखने की ही सोच निहित थी । यह समाज किसी भी कीमत पर अपने पितामह, ग्राम अथवा काम-धंधो के सम्मान को ठेस नहीं लगने देता था। ये सब अपने पहचान चिह्नों को बनाए रखने का तरीका है । क्योंकि समय-समय पर प्राकृतिक आपदाओं के कारण बड़ी-बड़ी उथल-पुथल होती रहती हैं और लोग एक प्रांत से दूसरे प्रांत अथवा एक देश से दूसरे देश में जाकर बसते रहते हैं, परन्तु अपने पहचान चिह्नों को बनाए रखने की प्रवृत्ति उनमें रहती है, ताकि उनके वंश की विशेषताएं नष्ट न हो जायें, जैसे कदाचित् शर्मा से शर्मन- फिर जर्मन बन गया और वे अब भी अपनी आनुवांशिकता की पवित्रता बनाये रखने के लिए सिर्फ जर्मनों से ही शादी-ब्याह करने पर ज़ोर देते हैं। लगता है, कि हिटलर ने इसीलिए यहूदिओं को कत्ल करवाया था । अग्रवाल शब्द भी स्थान का सूचक है । वे वैश्य जो अग्रोहा से बाहर आकर इधर-उधर फैल गये, अपने को अग्रवाल कहने लगे, परन्तु उनके **'गोत्र'** अठारह ऋषियों के नाम पर ही बने रहे । अज्ञानता किसी भी क्षेत्र में क्यों न हो, कट्टरता एवम् हठ को जन्म देती ही है । **कट्टरता का जन्म मुस्लिम शासन के दौरान विशेष रूप से हुआ था, क्योंकि तब हममें गरीबी, भय, अशिक्षा एवम् अज्ञानता बहुत घुस गयी थी तथा अपनी पहचान बनाये रखने का भारी संकट भी था ।**

11. हो सकता है, कि बहुत से लोग जो व्यापक दृष्टिकोण से नहीं सोच पायेंगे, इन विचारों से सहमत न हो, फिर भी उचित अनुचित का विश्लेषण किये बिना लेख का उपसंहार नहीं किया जा सकता ।

शादी-ब्याह में सगोत्री होने का अर्थ है, कि वे दोनों परिवार मान लो कि मित्तल हैं, तो एक ही गुरु के शिष्य हैं, अत: दोनों के पुत्र एवम् पुत्री इस हिसाब से भाई बहिन हुए क्योंकि गुरु को सम्मान देना प्रथम कर्त्तव्य है अत: सगोत्री विवाह में लोग शादी के लिए इन्कार कर देते हैं, जबकि आज इस सत्य को उनमें से कोई भी नहीं जानता, कि सगोत्री का सही अर्थ क्या है ? अब न किसी को अपने गुरु का पता है और न ही गुरु के द्वारा सिखायी गई **'उपासना-पद्धति'** का । तब फिर गुरु के आदर व सम्मान का अर्थ ही व्यर्थ हो गया है । सगोत्री का एक अर्थ और भी है, कि एक ही गुरु के होने के कारण दोनों परिवारों की उपासना पद्धति एक जैसी है, ***अतएव भावी संतान में विचारों के सम्मिश्रण अर्थात् जीन्स द्वारा जो उन्नत अवस्था प्राप्त की जा सकती है वह सगोत्री विवाह द्वारा***

प्रतिरोधित हो जायेगी, इसलिए सगोत्री विवाह वर्जित थे । इस विचार को भाई-बहिन का विचार बतलाकर गोत्र के गम्भीर विचार का सरलीकरण कर दिया गया है ।

आज धर्म पर आधारित समाज एवम् चरित्र की उच्चता का कोई अर्थ ही नहीं रह गया है । सब ओर पैसा कमाने की आपाधापी है । अतएव सत्य एवम् धर्म की बातें करना निरर्थक एवम् अव्यवहारिक मानी जाती हैं । आज पश्चिमी सभ्यता से प्रेरित भारतीय समाज दिन-प्रतिदिन उन्मुक्तता की ओर अग्रसर हो रहा है ।

ऐसी परिस्थिति में वैज्ञानिक दृष्टिकोण को अपनाना अधिक उचित लगता है अर्थात् यदि व्यापारी प्रवृत्ति की संतान उत्पन्न करनी है, तो व्यापारी प्रवृत्ति वाले पुत्र-पुत्री का पाणिग्रहण कराना चाहिए ।

स्वास्थ्य, लम्बाई-चौड़ाई, आयु, पढ़ाई-लिखायी आदि बातों को तो ध्यान में रखना ही है, साथ में निम्न बातों के निर्णय के लिए ज्योतिष शास्त्र से भी मार्गदर्शन प्राप्त किया जा सकता है ।

1. **पुत्र एवम् पुत्री की आयु** - कुछ मामलों में शीघ्र मृत्यु होती देखी जाती है ।
2. **सन्तान की सम्भावना** - कुछ मामलों में सन्तान होती ही नहीं है ।
3. **भाग्य** - कुछ मामलों में धन-सम्पत्ति से रहित दरिद्री जीवन पाया गया है ।
4. **गुण-अवगुण एवम् चरित्र** - इसे ठीक-ठीक परख लेना आवश्यक है ।

उपरोक्त बातों की पहचान करना बड़ा ही मुश्किल कार्य है, फिर भी विद्वान ज्योतिषी इस बारे में पूरी तरह तो नहीं, पर कुछ न कुछ मार्गदर्शन तो दे ही सकते हैं तथा वृद्ध एवम् अनुभवी शुभचिन्तकों का परामर्श भी लाभदायक रहता है । **शेष ईश्वर की इच्छा पर छोड़ देना ही श्रेयस्कर रहेगा ।**

हरिः ॐ तत् सत् !